हिन्दी नाटक और रंगमंच के विविध प्रयोग

डॉ. अनुपमा
सह आचार्य,
हिंदी विभाग,
जी.डी.सी., सीताफलमंडी, हैदराबाद
मोबाईल नं.– 9008768306
E-Mail : dranupama.india@gmail.com

सौंदर्य, आनंद का उद्भावक होता है, लेकिन इसकी दृष्टि होती है कला के माध्यम से और कला साकार होती है कलाकृति के द्वारा । कलाकृति संबंधित माध्यम के सहारे निर्मित होती है । जैसे मूर्ति, पत्थर, मिट्टी आदि से चित्र, रंग और फलक के माध्यम से संगीत स्वर और ऊर्जा के माध्यम से इत्यादि ।

समय के साथ विभिन्न कलाओं का सौंदर्यशास्त्र विकसित हुआ लेकिन नाटक यानि रंगमंच के सौंदर्यशास्त्र का स्वरूप आज तक स्थिर नहीं हुआ है । नाटक में विभिन्न कलाओं का संयोग होने से उन कलाओं के सौंदर्यशास्त्र के मिश्र रूप ही नाटक का सौंदर्यशास्त्र समझा जाता रहा है । नाटक का स्वरूप और लक्ष्य अन्य कलाओं की अपेक्षा व्यापक होता है । अभिनय नाटक का केन्द्रीय तत्त्व है । अभिनय में भी उसके प्रकारों, आंगिक, वाचिक और सात्विक का संतुलन होना चाहिए । अगर अभिनेता सिर्फ आंगिक–वाचिक में दक्ष हो और सात्विक का उचित प्रदर्शन न करे तो अभिनय मशीनी लगने लगता है । वर्तमान समय में नाद–सौंदर्यशास्त्री वेश–भूषा और रूप–सज्जा यानि कि... को अभिनय प्रकारों से इतर सहायक तकनीक के अंतर्गत मानते हैं । इसके अंतर्गत आने वाला तत्त्व है– रुप–सज्जा, वेश–भूषा, प्रकाश व्यवस्था, संगीत और मंच व्यवस्था इन सब की अच्छी और संगत योजना उत्तम नाटक के लिए आवश्यक है । इसके साथ दृश्य में वर्णित स्थान, स्थिति और चरित्रों के मनोविज्ञान को गंभीरता से विश्लेषित किया जाए। सिर्फ फार्मूले में बंधकर काम करने से नाटक प्रभावशाली नहीं हो सकता ।

पिछले कई वर्षों में भारतीय नाटक और रंगमंच में जिस तरह से प्रयोगशीलता का दौर आया है, उसकी कई घटनाएँ साफ–साफ दिखाई पड़ती हैं, कभी वह गीत, संगीत, नृत्य और चालन के माध्यम से कई नई रंगभाषा की खोज करता दिखाई पड़ता है, कभी वह टेलीविजन, वीडियो, चित्रकला आदि के रास्ते से एक नई मंचसज्जा और भाषा की खोज में अग्रसर होता दिखाई पड़ता है, कभी वह मूक अभिनय, ध्वनियों, मशीनों और दूसरे जितने भी तकनीकी तंत्र–मंत्र हो सकते हैं, उसके माध्यम से रंगमंच की अपनी एक तकनीकी भाषा रचने की कोशिश में लिप्त नजर आता है ।

हिन्दी में नाट्य रचना और हिन्दी रंगमंच का प्रारंभ भारतेन्दु हरिचन्द्र से ही होता है । भारतेन्दु स्वयं अपने आप में एक परंपरा भी थे और प्रयोग भी । हिन्दी में नाट्यांदोलन के जन्मदाता भारतेन्दु ने हिन्दी नाटक को जिस यथार्थ और सामाजिकता के प्रशस्त जनमार्ग की और मोड़ा, उसे लंबे समय के अंतराल के बाद जयशंकर प्रसाद ने आदर्शोन्मुख स्वच्छंदतावाद के सांस्कृतिक राजमार्ग पर दौड़ा दिया । प्रसाद के नाटकों में उन्माद की हद तक राष्ट्रप्रेम, उत्सर्ग भावना, भारतीय संस्कृति की अस्मिता का आग्रह, अंर्तसंघर्षों की काव्यात्मक अभिव्यंजना तो बड़ी मात्रा में मिल जाती है, लेकिन नहीं मिलती है, तो दृश्यात्मक रंग, दृष्टि और रंगमंचीय शिल्प के प्रति कोई आग्रह या प्रयत्न । आधुनिक काल में नई दृष्टि से और नई प्राथमिकताओं के साथ लिखे गये

नाटकों के प्रस्थान बिंदु पर प्रथमतः खड़ा होने का श्रेय जगदीशचन्द्र माथुर के 'कोणार्क' नाटक को है जिसमें कलाकार के अंर्तद्वंद्व की कथा है। तत्पश्चात् धर्मवीर भारती का द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात की स्थिति 'अंधायुग' और मोहन राकेश का 'आषाढ़ का एक दिन' प्रमुख नाटक रचनाएँ हैं। हिन्दी नाट्य लेखन को ठोस मंचीय आधार देने तथा मंचीय संभावनाओं के नये द्वार खोलकर हिन्दी क्षेत्र में रंग चेतना को एक व्यापक आंदोलन का रूप देने में मोहन राकेश के नाटकों, 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस' और 'आधे अधूरे' की भूमिका निर्विवाद ऐतिहासिक है। 'भोग और वैराग्य', 'सेतुबंध', 'एक और द्रोणाचार्य', 'अग्निलीक' (पुराण का आधार है), 'अंधा युग' एक मॉडर्न क्लासिक है – उसे जितनी बार पढ़ेंगे नए–नए अनुभव, नई बातें पाएगें। कैसा अंधापन है उसमें? सचमुच वैसा अंधापन जिसमे इस दुनिया के रंग दिखाई नहीं देते या वह अंधापन जिस जानबूझकर ओढ़ लिया जाता है। इस 'नरसिंह कथा' मूल्यहीन शक्ति के मध्य से द्रवित होने वाली पशुता का चित्रण करता है। 'अग्निलीक' रामकथा को नवीन समसामायिक दृष्टि से सम्मुख रखता है। यहाँ राम राजतंत्रात्मक शक्ति के प्रतीक हैं। नारी चेतना का नया स्वर भी इस नाटक में मिलता है। 'खजुराहो को शिल्पी' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर रचित नाटक है किन्तु जीवन की तात्विक व्याख्या प्रस्तुत करता है। 'कोमल गाँधार' में गाँधारी के चरित्र को पुनः विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। अंधेपन की अनेक परतें है। इस अंधेपन को जिसे धर्मवीर भारती ने महाभारत से उठाया और फिर उसे नए रूप में आप के संदर्भ से एकदम जोड़ते हुए फिर से रचा। 'रंगकर्मी' रंजन थियाम का कहना है– मैंने लोक संगीत का उपयोग किया–जो लोक संपदा है, उसे प्रयोग करके नाटक को नए रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया। इस प्रयोग से पाँच साल तक नाटक कर सकते हैं क्या– और भी प्रयोगों की आवश्यकता पड़ती है। 'अंधायुग' लिखा तो उसमें अंधापन प्रस्तुत करने के लिए धृतराष्ट्र को काला गॉगल तक पहना दिया। मैं फिल्मों की तरह ही धृतराष्ट्र को अंधा दिखा सकता था, टटोलता हुआ– किन्तु उसमें कोई नयापन, कोई आकर्षण नहीं आ पाता। अब काला गॉगल धृतराष्ट्र की आँखों पर है, दर्शक देखें और अपनी कल्पना से अंधेपन की गहराई को पकड़े। उन्हें छूट है, नाटक से जुड़ने का ये तरीका है। कई महान हस्तियों के नाटक जैसे अज्ञेय का 'उत्तरप्रियदर्शी', दुष्यंत कुमार का 'एक कंठ विषपायी', नरेश मेहता का 'खंडित यात्राएँ' तथा लक्ष्मीकान्त वर्मा का 'कथाहीन' प्रयोगधर्मी नाटक 'अपना अपना जूता' भले ही मंचीय कोटि के नाटकों के रूप में विशेष चर्चित न हो सके, किन्तु दृश्य में नवीनता और शिल्प प्रयोग की दृष्टि से इन नाटकों की नव नाट्य भाषा निर्मिति में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। अज्ञेय का गीति नाट्य 'उत्तर प्रतिशदर्शी', आंतरिक प्रतिरूप से, निरंतर संघर्षरत, एक संवेदनशील, सहज मानव को खड़ा कर पश्चाताप और ग्लानी की तीव्रतम अनुभूतियें की रहा से, बुद्ध की व्यापक करूणा की देहरी तक पहुँचाने का रंगधर्मी प्रयास है।

काशीनाथ सिंह का 'धोआस', रमेश बख्शी का 'तीसरा हाथी', देवयानी का कहना है। हमीदुल्ला का 'दिल्लली ऊँचा सुनती है' तथा 'रावण लीला' कुछ ऐसे नाटक हैं, जो अपने नये यथार्थवाद तथ्य और प्रयोगधर्मी नये पाठ्य शिल्प एवं लोक नाट्य शैली तथा तराशी हुई तेज तर्रार नाट्य भाषा के चलते आधुनिक रंगकर्मियों का ध्यान आकर्षित करने में सफल हुए हैं।

जब हिन्दी का नव नाट्य लेखन प्रयोगशीलता और नवीनता के नाम पर पश्चिम के रूपवादी नाट्य शिल्प से कुछ अतिरिक्त रूप से प्रभावित हो गया था तब सर्वेश्वरदयाल का 'बकरी', मणिमधुकर के 'दुलाईवाई' ने पारंपरिक भारतीय लोकनाट्य शैली और अछूती लोकभाषा के सार्थक प्रयोग के अकृत्रिम मंचीय वातावरण का निर्माण कर प्रयोगशीलता की मूक नई राह बनाई। भीष्म साहनी घोषित मार्क्सवादी हैं और उनकी कथा कृतियों की ही तरह उनके नाटक 'हानुश', 'कबीरा खड़ा बाजार में' उनके प्रगतिशील सामाजिक बोध और गहरी मानवीय संवेदना के प्रमाण हैं। संपूर्ण भारतीय मध्यकाल में कबीर का एकमात्र ऐसा प्रखर व्यक्तित्व और चिंतन है जो आज भी उतना ही प्रासंगिक है। जितना तब था और कबीर की यही प्रासंगिकता 'कबीरा खड़ा बाजार

में' का अभिप्रेत भी है। यह नाटक अपने कथ्य के पैनेपन और प्रस्तुति शैली शिल्प की सी अनुकूलता के लिए विशेष चर्चित है। भीष्म साहनी के नाटकों में नाट्य शिल्पगत प्रयोगशीलता है, लेकिन प्रयोग का आग्रह नहीं।

गिरिराज किशोर का नाटक 'प्रजा ही रहने दो' भले ही इस दौर में लिखित सर्वाधिक नाटकों का आधार और प्रेरणा स्रोत 'महाभारत' के एक प्रसंग पर ही आधृत है किन्तु वह समकालीन मानव की जीवनगत विसंगतियों और मानव के अंतविरोध के अंतर... आकाश में फैलता और विकसित होता है। इसमें द्रौपदी आधुनिक मुक्तिगामी नारी चेतना की प्रखरता की जीवन प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित है। मुद्रा राक्षस एक प्रतिबद्ध वामपंथी के साथ–साथ हर क्षेत्र में अपनी एक लीक बनाने वाले पंरपरा लेखन के रूप में जाने जाते हैं। अपने तेंदुआ, योर्स फेथफूली' और 'तिलचट्टा' जैसे बेहद प्रयोगशील नाटकों के द्वारा उन्होंने वर्तमान राजनीतिक, सामाजिक मुखौंटों को न केवल नंगा किया, वरन् इन पर क्रूर आक्रमण भी किया। मुद्राराक्षस के नाटक अपने दृश्य के रंगेपन को क्रूर पदार्थ से जितना चौंकाते हैं, उतना ही अपने बेहद प्रयोगशील रंगशिल्प तथा नई नाट्य भाषा के पैनेपन से भी। हिन्दी नव नाट्य सृजन के क्षेत्र में नाट्य कृतियों की संख्या और इनकी रंगमंचीय सफलता की दृष्टि से डॉ. शंकर शेष के नाटक पारिवारिक पीड़ा, वैमनस्य, विघटन मूल्य, संक्रमण, संवाद हीनता और अस्तित्व संकट का प्रामाणिक त्रासद दस्तावेज हैं। इसमें हमारी समकालीनता का विकृत विकराल और भयानक चेहरा स्पष्ट उभरकर सामने आता है। पिछले तीन दशकों में व्यक्ति के केन्द्रीत और धुरीहीन होकर अंधी गलियों में परिक्रमित होने का एहसास गहन से गहनत्तर हुआ है। अपने ही द्वारा उत्पन्न विराट याँत्रिकता और मशीनीकरण के आगे आदमी बौना महसूस कर रहा है। विगत वर्षों में विभिन्न भारतीय राजनीतिक घटात्रलों पर जो भ्रष्टाचार, लोलुपता, स्वार्थन्धता, मूल्यहीनता संकीर्ण सरोकार विरूपता आदि जन्में–पनपे हैं उन्होंने आधुनिक नाटक एक विशेष भंगिमा व स्वर और विस्तृत आधार–भूमि प्रदान करता है, आस्था विश्वास के टूटने और आक्रोश के तीव्र स्वर इनमें स्पष्ट सुने जा सकते हैं। इन्होंने अपने नाटकों में मनुष्य के घुटनशील स्वरों को वाणी प्रदान की है। इनके नाटकों में द्वंद्व प्रमुख रूप से उभरा है। समकालीन जटिल, प्रश्नाहत बहुआयामी और बहुस्तरीय मानवीय संवेदना की अभिव्यक्ति शेष के नाटकों का मुख्य कथ्य रही है। वे सही अर्थों में कलाकार थे। उन्हें कला की परख व पहचान थी। नाटक को जीवन पर्याय माननेवाले शंकर शेष के लिए नाटक ही सर्वस्व रहा।

अंत में यह का जा सकता है कि जहाँ भारतेन्दु हरिचन्द्र ने हिन्दी की नाट्य–कला को छोड़ा था वहाँ से जयशंकर प्रसाद ने शुरू किया और यहाँ से प्रसाद ने छोड़ा था वहाँ से जगदीशचन्द्र माथुर और मोहन राकेश उसे लेकर आगे बढ़े। यह कहना असंगत न होगा कि जिस रंग परंपरा को इन्होंने स्थापित किया डॉ. शेष ने हीं थाम लिया और निःशेष होने तक इसी साधना में लगे रहे। सभवतः आधुनिक नाटककारों में प्रथम आ सकते हैं। इनके लगभग दो दर्जन नाटक प्रकाशित हैं–जिनमें 'फंदी', 'एक और द्रोणाचार्य', 'रक्तबीज' बहुचर्चित नाटक हैं। इनकी अतीत की अपेक्षा अपना वर्तमान अधिक प्रेरित करता है और वह वर्तमान इतना बहुस्तरीय, बहुरंगीय है कि इसमें हर मूड, हर स्थिति और हर भाव विचार की सामग्री किसी कल्पनाशील सर्जक मानस को मिल सकती है। कथ्य, रंगशिल्प तथा नाट्य भाषा में पूरी तरह संतुलन कायम रखने की क्षमता ही इनके नाटकों की मंचीय सफलता का राज है।

'सिंहासन खाली है' में सुशील कुमार सिंह संघर्ष नहीं चाहता है और यह तभी संभव हो सकता है, जब नाटककार की चुनौती दर्शक स्वीकार कर सकें। यह भी एक नया प्रयोग है, जहाँ दर्शक चौंक जाते हैं। 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' के द्वारा रंग जगत का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने वाले सुरेंद्र वर्मा का नाटक 'द्रौपदी', छोटे सैय्यद बड़े सैय्यद तथा 'कैदे हयात' आदि में भी उतने ही ताज़ा और प्रभावशाली दिखाई देते हैं। सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में एक गहरा सौंदर्य बोध है। समकालीन जीवन स्थितियों को उसकी आंतरिक, बाहरी संपूर्णता में देखने–समझने और पकड़ने की संवेदनात्मक क्षमता तथा

बदलते समय के साथ परिवर्तित हो रहे रंग शिल्प, भाषिक मुहावरे, नाट्य शैलियों पर चरित्रांकन की मनोवैज्ञानिक प्रतिविधियों की वैश्विक दृष्टि ने सुरेन्द्र वर्मा को एक गंभीर प्रयोगशील नाटककार के रूप में स्थापित किया है । नये नाटकों की सृजनात्मक सहभागिता में चंद महिला नाटककारों का योगदान भी कम गौरतलब नहीं है । मन्नु भंडारी का 'बिना दीवारों का घर' मृणाल पांडे के 'जो राम रचि राखा', 'चोर निकल भागा', मृदुला गर्ग के 'एक और अजनबी' तथा 'आदमी जो मछुआरा नहीं था' आदि नाटकों ने अपने यथार्थवादी नये कथ्य और आधुनिक नाटक रंगशिल्प के माध्यम से आज के जिस बहुस्तरीय जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति की है, वह समकालीन नाटक रचना और इसमें रचनाकारों को प्रमाणित करते हैं । इन सभी ने नाट्य लेखन को काफी गंभीरता से लिया है और समकालीन रंग शिल्प की प्रयोगशीलता की चुनौतियों को साहस और सामर्थ्य के साथ स्वीकारा है । 'लिफ्ट' नाटक का प्रयोग हुआ है । (केवल भाषा संवाद और भाव) तुम्हारी अमृता नाटक का मंच (प्रयोग, खेल, भाषा और भाव बिना हिले डुले) ।

जो कर रहे हैं नाटक । उन्हें भी नहीं है मालूम
कितनी सदियों से चल रहा है यह शो
जीन घंटो में कितने सारे वर्ष चले आते हैं
जब परदा खिंचता है और बत्तियाँ बुझती हैं
तो कई दुनियाएँ एक साथ झन्न से खत्म हो जाती हैं ।

–प्रियदर्शन

कुर्सियाँ लग चुकी हैं । प्रकाश व्यवस्था संपूर्ण है
माइक हो चुके हैं टेस्ट
अब एक फुस फुसाहट पहुँचती है
प्रेक्षागृह के किसी भी कोने में
तैयार है कालिदास, सिर्फ वस्त्र बदलने बाकी है
मल्लिका निहारती है अपने केश ।

–रंगप्रसंग

प्रयोग के स्तर पर हिन्दी रंगमंच की नवीन खोज और स्थापना स्वातंत्र्योत्तर नाट्य साहित्य की बड़ी घटना मानी जा सकती है । इब्राहिम अलका, सत्यदेव दूबे, श्यामानन्द जालान, ओमा शिवपुरी, राजेन्द्रनाथ, देवेन्द्र राज अंकुर आदि रंगकर्मियों के प्रयास से रंगमंच के प्रति एक दृढ़ आस्था अविर्भाव से व्यावहारिक कथ्य लेखन के अभाव की पूर्ति का तीव्रता से प्रयास हुआ ।

आज के समस्या नाटक व्यक्ति की कमजोरियों की, सामाजिक राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्था की आलोचनात्मक व्याख्या के साथ वैज्ञानिक विश्लेषण से, दर्शकों को इस प्रकार की विषमताओं से जूझने तथा उनसे बचने की सलाह देते हैं ।

पहले की अपेक्षा आज के रंगमंच की सज्ञा, केवल चित्रों एवं दृश्यों को यथा– संदर्भ नियोजित करने में ही नहीं है, वरन् निर्देशक अपनी कल्पना से ऐसे प्रतीकों की भी सृष्टी करता है जिनसे, रंगमंच पर प्रदर्शित दृश्य–व्यापार अपने आन्तरिक और बाह्य विन्यास के साथ अभिव्यक्त हो सके । नाटक के अभिप्राय की सम्यक् अभिव्यक्ति प्रमुखतः अभिनय के द्वारा होती है, अभिनेता ही नाटककार एवं 'रंगनिर्देशक' द्वारा भावनाओं एवं कल्पनाओं को संप्रेषणीय एवं मूर्तिमान बनाता है । अभिनेता द्वारा प्रस्तुत अभिनय के दो रूप हैं कथोपकथन और भाव प्रदर्शन ।

आचार्य वामन ने नाटक की तुलना चित्र से की है, अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार चित्र में रंग एवं रेखाओं की योजना को आल्हाद प्रदान करती है, उसी प्रकार, नाटक में उसकी प्रविधि के अनुरूप विभिन्न उपकरणों की संहति, सामाजिकों के रसास्वाद का कारण बनती है। काव्य की चरम अभिव्यक्ति नाटक द्वारा ही संभव है – "नाटकान्तम कवित्वम"

हिन्दी के नाट्य–प्रदर्शनों का अभिप्राय सदैव एक समान नहीं रहा। युगीन परिस्थितियों एवं अन्यान्य कारणों से धीरे–धीरे रसान्विति से होकर कार्यव्यापार एवं शील–वैचित्रय के समन्वय के साथ–साथ नवीन मनोवैज्ञानिक एवं यथार्थवादी दृष्टिकोण तक इसकी गति रही है। भारतेन्दु युग, प्रसाद युग तथा प्रसादोत्तर काल के नाटकों में जो विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है और उन पर परिवर्तित मान्यताओं का जो प्रभाव दिखलाई पड़ता है वह निश्चय ही अलग है। हिन्दी नाट्य–प्रदर्शनों में दृश्य–विधान के लिए पाश्चात्य सामग्री से अधिक लाभ उठाया गया है। प्रायः विविध प्रकार की दृश्य योजना के लिए उसी रंग से मिलते–जुलते परदे लगा दिए जाते थे। आज हिन्दी राष्ट्रभाषा है, इसलिए उसके रंगमंच को राष्ट्रीय स्तर के महत्व को प्राप्त करना आवश्यक है। निश्चित है कि इस प्रकार के रंगमंच के विकास के लिए प्राचीन परंपराओं को पुर्नजीवित करना पड़ेगा, हमें प्राचीन अभिनय के स्वरूप को प्रयोग करना है। आज हिन्दी नाटक के लिए लेखकों के विचार भिन्न–भिन्न हो सकते हैं। भारतीय नाटक परंपरा के पुननिर्माण की आवश्यता नृत्य नाट्य परंपराओं का समन्वय कर उन्हें बृहत्तर भारत की परंपराओं से जोड़े। लोक–नाटकों का योगदान सफलता प्रदान कर सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:–

1. डॉ. सुषमा बेदी–हिन्दी नाट्य प्रयोग के संदर्भ में, पृ.सं.6.
2. डॉ. सीताकुमार–स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक, मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में, पृ.सं.157.
3. डॉ. दशरथ ओझा– आज का हिन्दी नाटक प्रगति और प्रभाव, पृ.सं.17.
4. डॉ. नर नारायण राव– नया नाटक, उद्भव और विकास, पृ.सं.216.
5. सारिका – 16 जनवरी 1982 में प्रकाशित डॉ. शंकर शेष के साथ श्री भगवान टटलानी से बातचीत.
6. डॉ. बृजराज किशोर– हिन्दी नाटक और रंचमंच समकालीन परिदृष्य, पृ.सं.98.
7. दीर्घा, अंक – 33, पृ.सं.21.
8. डॉ. प्रकाश नारायण जाधव– रंगधर्मी नाटककार शंकर शेष, भूमिका से.
9. डॉ. वसुधा सहस्रबुद्धे– शंकर शेष का नाट्य साहित्य, पृ.सं.23.
10. डॉ. सिद्धनाथ कुमार प्रसाद के नाटकों का पुनर्मूल्यांकन, पृ.सं.212.
11. डॉ. हर्षबाला शर्मा– समकालीन हिन्दी नाटक,
12. रामचन्द्र सरोज– हिन्दी नाटक इतिहास, शिल्प और रंगमंच – पृ.सं.147.